मार्क्स की वापसी

रणधीर सिंह

गार्गी प्रकाशन

हिन्दी की कुछ प्रतिष्ठित पत्रिकाओं के हाल के अंकों में प्रकाशित कुछ महत्वपूर्ण लेखों को हमने पुस्तिकाओं की एक श्रृंखला के रूप में प्रकाशित करने का निर्णय लिया है। अलग-अलग विषयों पर केन्द्रित इन लेखों में एकमात्र समानता यह है कि ये कुछ अत्यन्त ही महत्वपूर्ण समस्याओं के बारे में सोचने के लिए हमें न केवल विवश करते हैं, बल्कि उसके लिए जरूरी विचारधारात्मक ढाँचा भी मुहैया करते हैं। इन्हें पुनर्प्रकाशित करने का हमारा उद्देश्य इन्हें पाठकों के एक अपेक्षाकृत बड़े दायरे तक पहुँचाना है इसमें वे पाठक भी शामिल हैं जो सम्बन्धित पत्रिका के पाठक समूह में शामिल न होने के चलते इन लेखों से वंचित रह गये होंगे।

यह लेख रणधीर सिंह द्वारा 'फाउण्डेशन फार सोशल रिस्पांसबिलिटी' में नयी सहस्राब्दी के सिद्धान्तों पर आयोजित व्याख्यान श्रृंखला के एक हिस्से के तौर पर दिये गये वक्तव्य के कुछ अंशों का सम्पादित रूप है जिसे 'परख' ने लिबरेशन से साभार ग्रहण कर अंग्रेजी से अनुवाद कर प्रकाशित किया था। हम जिस रूप में इस आलेख को प्रकाशित कर रहे हैं वह 'परख' से ही लिया गया है और इसके लिए हम 'परख' परिवार के आभारी हैं।

-गार्गी प्रकाशन

अरसा पहले सत्रहवीं शताब्दी में अंग्रेज दार्शनिक थॉमस हॉब्स ने अपने हितों के खिलाफ जाने वाले सत्यों, यहाँ तक कि गणितीय सूत्रों के प्रति शासक वर्ग की घृणा की ओर संकेत किया था। अपने खास तीखे अंदाज में उसने लिखा था ''मुझे कोई शक नहीं है कि किसी व्यक्ति के स्वामित्व के अधिकार या स्वामित्वसम्पन्न व्यक्तियों के हितों के खिलाफ पड़ने पर 'त्रिभुज के तीन कोणों का योग दो समकोण के बराबर होता है', इस सिद्धान्त पर अगर सवाल न भी खड़ा किया जाता तो रेखागणित की सारी किताबों को जलाकर इसे तब तक के लिए दबा दिया जाता जब तक इस सत्य से सरोकार रखने वाले लोग इसका उद्धार करने के काबिल नहीं हो जाते।'' (हमारी सभ्यता के विकासक्रम में किताबों को जलाना और प्रतिबन्धित करना तथा सत्य को दबाना इसीलिए खासी अहम भूमिका निभाते रहे हैं और हमारे देश के मौजूदा निजाम में इस कला को नया जीवन मिला है।) अब जाहिरा तौर पर मार्क्स का सत्य हमारे समाज में स्वामित्व रखने वाले लोगों के हितों के खिलाफ पड़ता है। इसलिए उसके ऐसे दुश्मनों की कमी नहीं रही है जो पिछले लगभग सौ वर्षों में उसे तोड़-मरोड़कर और विकृत करके उसका खंडन करते रहे हैं। लेकिन मार्क्स ने अपने दोस्तों के हाथों इतनी ही या शायद इससे भी अधिक तकलीफ पायी, जिन्होंने अपने जड़सूत्रवाद, विज्ञानवाद, अर्थवाद और ऐसे ही अन्य तरीकों से दुश्मन के शस्त्रागार में हथियारों की कमी नहीं पड़ने दी। अपनी भावपूर्ण कविता 'कार्ल हेनरिख मार्क्स' में जर्मन कवि हान्ज माग्नस एन्जेन्सबर्गर, ने लिखा है–

छला गया पाता हूँ मैं तुम्हें
अपने अनुयाइयों के हाथों
केवल तुम्हारे दुश्मन
सच्चे रहे हमेशा की तरह

दोस्तों और दुश्मनों के बीच मार्क्स के विचारों का पूरा दायरा जो दर्शन और इतिहास, अर्थशास्त्र और राजनीति तथा नीतिशास्त्र और संस्कृति तक फैला हुआ है, तोड़ा-मरोड़ा जाता रहा है। इस प्रक्रिया के जो उदाहरण सबसे पहले दिमाग में आते हैं उनमें पहला धर्म और अफीम के बारे में तथा दूसरा सर्वहारा की तानाशाही के बारे में मार्क्स का कथन। मार्क्स अक्सर कहा करता था– 'काश, लोग बस पढ़ पाते।' जाने-माने मार्क्सवादी अर्थशास्त्री मॉरिस डॉब ने, जो अच्छा मार्क्सवादी विचारक भी था,

एक बार कहा था कि मार्क्सवाद क्या है, यह बताने से बहुत आसान है यह बताना कि मार्क्सवाद क्या नहीं है। मार्क्सवाद के बारे में कुछ कहना हमेशा एक विकट चुनौती रहा है और इसके नाम पर सोवियत संघ में जो कुछ बना था उसके पतन ने मसले को और उलझा दिया है।

मैं यहाँ मार्क्सवाद पर, जैसा मैंने इसे समझा है, सम्पूर्णता में कुछ कहने या कोई विवाद खड़ा करने नहीं जा रहा हूँ। अकेले समय का दबाव ही इसे असम्भव बना देता है। मैं इस विषय के मर्म को छूने और आस-पास की दुनिया तथा अपने देश में जो कुछ हो रहा है, उसके लिए इसे प्रासंगिक बनाने की कोशिश करूँगा। मैं कुछ बुनियादी प्रस्तावों को तो रखूँगा लेकिन उनकी व्याख्या या उनकी विशिष्टताओं का निर्धारण नहीं कर सकूँगा, जो समाज-वैज्ञानिक चिन्तन के क्षेत्र में किसी व्यक्ति के प्रस्तावों को उच्चतर वैधता प्रदान करने के लिए हमेशा जरूरी होते हैं। मैं जवाब कम दूँगा, सवाल अधिक उठाऊँगा। इसके पीछे मेरा उद्देश्य आपके साथ मार्क्स के इरादों की सामान्य समझदारी में साझा कहना है और मुझे उम्मीद है कि यहाँ मौजूद नौजवानों में से कम से कम कुछ लोग अपने आस-पास की हकीकत के बारे में सही किस्म के सवाल उठाना सीख सकेंगे, क्योंकि अंतिम विश्लेषण में मार्क्स का मार्क्सवाद दरअसल यही है।

मुझे यकीन है कि आप में से बहुत सारे लोग मेरे वक्तव्य के शीर्षक 'मार्क्स की वापसी' से हैरान होंगे। मैं आपको आश्वस्त करता हूँ कि इसमें 'पुराना सिद्धान्तवाद अच्छा' या जैसा कि मुझसे अब निराश हो चुके मेरे कुछ दोस्तों का कहना है, 'हद से हद बेमौका आशावाद' से अधिक बहुत कुछ है। अस्सी के दशक के अन्त में जब पूर्वी योरप में कम्युनिस्ट राज्य व्यवस्थाएँ ध्वस्त हो रही थीं, अमरीका की एक उच्चस्तरीय व्यावसायिक पत्रिका 'न्यूयार्कर' ने इस मौके पर जश्न 'राबर्ट हेलब्रनर' के लेख 'पूँजीवाद की विजय' के साथ मनाया। इसके तर्क पूरी दुनिया में पूँजीवाद की स्तुति के नये दौर और 'मार्क्सवाद के अन्त' की पुनर्घोषणाओं के साथ गूँज उठे। उन तर्कों में गम्भीर गलतियाँ थीं, लेकिन इस वक्त यह मेरा विषय नहीं है। फिलहाल महत्वपूर्ण बात यह है कि एक दशक बीतते न बीतते 1997 के अन्त में भविष्य पर विचार करते हुए उसी 'न्यूयार्कर' ने 'आगे क्या?' इस विषय पर लेखों की एक श्रृंखला प्रकाशित की। इस श्रृंखला में उसने अगले सबसे प्रभावशाली विचारक की तलाश में डेवीज नामक अंग्रेज, जो मार्क्सवादी नहीं है न कभी रहा है का लेख छपा 'कार्ल मार्क्स की वापसी!' (डेवीज ने यह लेख लिखने की यह अनिवार्यता तब महसूस की जब अमरीका के कारपोरेट जगत की उच्चतम स्थिति में पहुँचे हुए उसके एक मित्र ने उससे कहा कि यह सब कुछ वैसा ही है जैसा कि मार्क्स ने इसे बताया था।) यह लेख इस वाक्य के साथ खत्म होता है, ''उसकी (मार्क्स की) किताबें तब तक पढ़ी जाती रहेंगी जब तक

पूँजीवाद रहेगा।'' डेवीज सच कहता है, मैं सिर्फ यह रेखांकित करूँगा कि किसी ने भी पूँजीवाद का अध्ययन और विश्लेषण मार्क्स से बेहतर नहीं किया और पूँजीवाद के अपने इस विश्लेषण में वह सचमुच भविष्यदृष्टा साबित हुआ। इसीलिए हमारे समय में उसकी प्रासंगिकता बनी हुई है और नयी सहस्राब्दी में किसी व्यावहारिक सिद्धान्त की तलाश में हमें बार-बार मार्क्स के पास जाना पड़ेगा।

मार्क्स प्रासंगिक है, क्योंकि राष्ट्रीय और वैश्विक दोनों स्तरों पर हम पूँजीवाद की दुनिया में रह रहे हैं। निश्चय ही आज का पूँजीवाद वैसा नहीं है जैसा उन्नीसवीं सदी में मार्क्स ने उसे देखा और विश्लेषित किया था। तब से इसमें कई महत्वपूर्ण परिवर्तन आये हैं और समकालीन पूँजीवाद को समझने और उससे लड़ने के लिए उन्हें पहचानना जरूरी है। लेकिन जैसा कि रेमंड विलियम्स ने एक बार चेतावनी दी थी कि पूँजीवाद में आये परिवर्तनों को दर्ज करते हुए हमें उसमें अपरिवर्तित रहने वाली चीजों का अवमूल्यन करने की गलती कभी नहीं करनी चाहिए। इन चीजों में पूँजीवाद का संरचनात्मक तर्क, पूँजी-संचय की इसकी लगभग कानून जैसी प्रक्रिया, जिसे मार्क्स ने राष्ट्रों के अन्दर और बाहर विषम और असंतुलित विकास के लिए जिम्मेदार माना था, सबसे पहले आता है। पूँजीवाद के विकसित केन्द्रों में थोड़ा-बहुत नियंत्रित होने के बावजूद राष्ट्रों के अन्दर इसने एक छोर पर समृद्धि और दूसरे छोर पर दरिद्रता का ही संचय किया। पश्चिमी समाजों में 'कल्याणकारी राज्य' के अन्त के साथ ही नियंत्रण की उपरोक्त प्रक्रिया भी उलट सकती है। दुनिया के स्तर पर इसका अटल परिणाम वैश्विक पूँजीवाद के केन्द्र और हाशिये के बीच दूरी के रूप में सामने आया है जो इसके दो ध्रुवों में समृद्धि और दरिद्रता के बीच बढ़ती हुई खाई में बदलती जा रही है। पूँजीवाद का यह शोषणपरक संरचनात्मक तर्क आज भी उतना ही सक्रिय है जितना तब था जब मार्क्स ने पहली बार पूँजीवाद का अध्ययन और विश्लेषण किया था। दरअसल भूमंडलीकरण के साथ यह पहले से अधिक सक्रिय हुआ है, क्योंकि दुनिया आज पहले की अपेक्षा अधिक पूँजीवादी हुई है। यह एक ऐसी सच्चाई है जिसे बुर्जुवा विचारधारा 'भूमंडलीकरण' को एक मिथ बनाकर धुंधला कर देना चाहती है।

समय के साथ 'उत्तर (आधुनिकता)' के कुछ-कुछ धूमिल होने के साथ 'भूमंडलीकरण' की चर्चा आजकल फैशन में है, मानो कुछ ऐसा हो रहा है जैसा पहले कभी नहीं हुआ। मानव इतिहास में मानो सबके लिए उदारता और समृद्धि का एक नया युग शुरू हो चुका है, एक ऐसा युग जिसमें पूँजीवाद, साम्राज्यवाद, शोषण और इसलिए समाजवाद सभी अतीत की वस्तुएँ बन गए हैं। और 'भूमंडलीकरण' के रूप में जो कुछ हो रहा है उसका मानो कोई विकल्प नहीं है, लेकिन यह सब सिर्फ वैचारिक विभ्रमीकरण है। पूँजीवाद अपनी शुरुआत से ही वैश्वीकरण करने वाली व्यवस्था रहा है। एडम स्मिथ इसे जानता था और आप इसकी सबसे तीखी और अक्षरशः भविष्यदर्शी

अभिव्यक्ति कम्युनिस्ट घोषणापत्र में पाएँगे, जिसमें मार्क्स ने निरन्तर फैलते हुए बाजार की जरूरत के बारे में लिखा जिसे पूँजीपति वर्ग अपने उत्पादों के लिए समूची दुनिया में निर्मित करता है। कैसे यह हर जगह बसेरा करता है, व्यवस्थित होता है, और अपने सम्बन्ध बनाता है। कैसे इसने विश्व बाजार स्थापित किया है और उस विश्व बाजार के शोषण के द्वारा इसने उत्पादन और उपभोग को हर देश में सार्वदेशिक चरित्र प्रदान किया है। कैसे यह सभी चीनी दीवारों को गिरा देता है और सभी देशों को बुर्जुवा उत्पादन व्यवस्था स्वीकार करने के लिए बाध्य करता है ताकि वे स्वयं बुर्जुवा बन सकें। इस प्रकार भूमंडलीकरण में कुछ भी नया नहीं है, न ही मानवता के इतिहास में कोई नया युग शुरू हुआ है। पूँजीवादी विस्तार का यह महज एक और चरण है, बेशक जिसकी अपनी कमोबेश महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं।

भूमंडलीकरण के वर्तमान चरण के बारे में नोट करने योग्य सबसे महत्वपूर्ण विशेषता ये है कि वैश्विक पूँजीवाद के पिछले युद्धोत्तर विकास वाले दौर, जिसे पूँजीवाद का स्वर्ण युग भी कहते हैं, से इसने मूलगामी प्रस्थान कर दिया है। इस युग का पूँजीवाद उदार बृहत् आर्थिक नियमन की कींस की उदार संवादी रणनीति और अधिक से अधिक लाभ की कभी न खत्म होने वाली पूँजी की भूख पर अंकुश लगाने की, 'कल्याणकारी राज्य' के रूप में जानी जाने वाली नीति से निर्धारित रहा है, जिसने संयोगवश पूँजीवाद को तीस के दशक की महामन्दी जैसी आत्मविध्वंसक प्रवृत्तियों से बचा लिया और समाजवाद की बाहरी चुनौती का सामना करने के लिए जरूरी मानवीय चेहरा अपनाने में इसकी मदद की। पूँजीवाद के संरचनात्मक संकट के प्रारम्भ ने, जिसमें अपरिवर्तनीय होने के सभी लक्षण दिखायी दे रहे हैं, इस पुराने दौर को बदल डाला। सत्तर के दशक में विश्व की अर्थव्यवस्था में गिरावट का दौर शुरू हुआ और तब से हर मन्दी के साथ स्थिति और बदतर हुई, व्यापार चक्रों के बीच अन्तराल घटता गया, क्षतिपूर्ति न हो सकी और विकास की दर में कमी आयी। अपने 'नव उदारवाद' के साथ भूमंडलीकरण पूँजीवाद के इसी संरचनात्मक संकट को हल करने की कोशिश है जो युद्धोत्तर स्वर्ण युग के विपणन से पूँजीवाद के मुक्त बाजार व्यवस्था में लौटने को रेखांकित करती है। विश्व बाजार में पूँजी को प्रतिस्पर्धा में बनाये रखने के लिए कीन्स की राज्य के हस्तक्षेप वाली अर्थव्यवस्था को अलविदा कहना पड़ा। पूँजीवाद में अब मानवीय चेहरे को धारण करने की क्षमता नहीं रह गयी है। राज्य पूँजीवाद के सेवक की अपनी पुरानी भूमिका में लौट गया है, और भूमंडलीकरण के मुख्य एजेंट के रूप में काम कर रहा है। कैसी विडंबना है कि जिस वक्त दुनिया सर्वाधिक मार्क्सवादी तरीके से व्यवहार कर रही है, तमाम बुद्धिमान लोग लगातार मार्क्सवाद के अप्रासंगिक होने की घोषणा कर रहे हैं। हमारे समय की सैद्धांतिकी की तलाश करने वाले लोगों के लिए मार्क्सवाद आज और अधिक प्रासंगिक हो गया है।

सच कहें तो मार्क्सवाद शब्द के परम्परागत अर्थों में सिद्धांत यानी 'विश्वासों की व्यवस्था' नहीं है। यद्यपि इसके मित्रों और शत्रुओं दोनों में इसका इस रूप में व्यवहार करने की प्रवृत्ति रही है। स्वयं मार्क्सवादियों ने प्रायः 'आस्थावानों' की तरह व्यवहार किया है और सोवियत संघ में तो इसे राजधर्म में तब्दील कर दिया गया था। मार्क्स कोई सैद्धान्तिक या दार्शनिक व्यवस्था का निर्माता नहीं था, पेशे से वह क्रान्तिकारी था जैसा कि उसकी मृत्यु के बाद उसकी कब्र पर दिये गये अपने मशहूर भाषण में एंगेल्स ने रेखांकित किया था। एंगेल्स ने कहा था कि दार्शनिक, अर्थशास्त्री, इतिहासकार और अन्य बहुत कुछ होते हुए भी मार्क्स दरअसल 'विज्ञान का आदमी' था। इसके तुरंत बाद उसने कहा, ''लेकिन यह सब कुछ उस व्यक्ति का आधा भी नहीं है—क्योंकि सबसे पहले मार्क्स एक क्रान्तिकारी था।'' मार्क्स ने अपने जीवन में यह चुनाव बहुत पहले ही कर लिया था। 1835 में स्कूल छोड़ते वक्त लिखे गये एक लेख 'पेशे के चुनाव पर एक युवक के विचार' में उसने लिखा था कि ''केवल अपने लिए काम करके कोई व्यक्ति मशहूर विद्वान, महान संत, श्रेष्ठ कल्पनाशील लेखक बन सकता है, लेकिन पूर्णता प्राप्त, सही मायने में महान व्यक्ति कभी नहीं।'' बजाय इसके मार्क्स ने अपने लिए एक ऐसे जीवन का चुनाव किया ''जो हमारी गरिमा के अनुकूल हो, जो उस सच्चाई पर आधारित हो जिसमें हमारा विश्वास हो, जो हमें मानवता के लिए काम करने का सर्वाधिक अवसर प्रदान करता हो।'' यह विकल्प जो जल्द ही सुस्पष्ट परिभाषित क्रान्तिकारी निष्ठा में परिपक्व हो गया, मार्क्स के साथ आजीवन बना रहा। अपने यौवन के आरम्भिक दिनों में मानवीय अस्तित्व को मनुष्य के लिए सबसे ऊँचा दर्जा देते हुए उसने ''मनुष्य को अपमानित करने, उसे गुलाम बनाने और उसका तिरस्कार करने वाली सभी परिस्थितियों को उखाड़ फेंकने की सुस्पष्ट अनिवार्यता'' की बात कही थी। बाद में पूँजी की रचना कर चुकने के पश्चात मार्क्स ने अपने एक मित्र को लिखा, ''मुझे उन तथाकथित व्यावहारिक लोगों की बुद्धि पर हँसी आती है, अगर कोई बैल बनना चाहे तभी वह मानवता की पीड़ाओं से मुँह मोड़कर अपनी खुद की चमड़ी की रखवाली कर सकता है।'' यही वह क्रान्तिकारी निष्ठा, मानवता के लिए काम करने का नैतिक चुनाव है जो मार्क्स के सैद्धान्तिक ग्रंथों में अन्तर्निहित है। इसका परिणाम कोई ऐसा सिद्धान्त नहीं था जिसमें आस्थावान लोग अपने विश्वास का उद्घोष करें, न ही सत्य को अपने कब्जे में रखने वाली कोई बन्द दार्शनिक व्यवस्था जैसा कि इसके शत्रुओं ने इसे चित्रित किया।

मार्क्स का युग विज्ञान और विवेक की सफलताओं पर मदहोश डार्विनीय युग था जिसने प्लेटो और हेगेल की परंपरा से प्राप्त उन दार्शनिक प्रवृत्तियों से नाता तोड़ लिया था जो मार्क्स के ही शब्दों में 'हर समस्या का हमेशा के लिए' समाधान ढूँढ चुकी थीं और हमेशा यह माँग करती थीं कि सत्य यहाँ है। यहाँ तुम्हें अवश्य घुटने टेकना होगा।

अपने युग के लिए महत्वपूर्ण एक वक्तव्य में मार्क्स ने (एंगेल्स के साथ) यह घोषणा की थी, ''हम मानव इतिहास के आरम्भ से कुछ पीछे हैं, और आने वाली पीढ़ियाँ जो हमें दुरुस्त करेंगी वे सम्भवत: उनसे कई गुना बढ़ी-चढ़ी होंगी जिनके ज्ञान को हम प्राय: तिरस्कार के साथ, दुरुस्त करने की स्थिति में हैं। ज्ञान के जिस मंच पर हम अब तक पहुँचे हैं वह अभी उतना ही अधूरा है जितना कि पहले आने वाले लोगों के लिए था।'' 'हर कुछ पर संदेह करो' मार्क्स का सबसे प्रिय पद्धतिमूलक सिद्धान्त था और यह गौरतलब है कि पूँजी समेत उसके तमाम महत्वपूर्ण ग्रंथों के शीर्षकों में समीक्षा शब्द मौजूद है। संक्षेप में यही आलोचनात्मक प्रवृत्ति मार्क्स के मार्क्सवाद में अन्तर्निहित है जो आगे चलकर एंगेल्स के अपने समर्थकों से इस अनुरोध में व्यक्त हुई थी कि ''वे मार्क्स और एंगेल्स की कृतियों से पवित्र ग्रन्थों की तरह उद्धरणों का चुनाव न करें बल्कि उस तरीके से सोचने की कोशिश करें जैसे मार्क्स ने उनकी जगह सोचा होता। इसी रूप में मार्क्सवाद नामक शब्द का कोई अर्थ है।'' इस प्रकार मार्क्स ने अपने पीछे कोई जड़ सिद्धान्त या आस्थाओं की कोई व्यवस्था अपने अनुयाइयों के लिए नहीं छोड़ी जिसकी हिफाजत कर सकें, बल्कि सर्वोपरि चिंतन की एक प्रणाली, पूँजीवाद द्वारा निर्मित अन्यायपरक और अमानवीय समाज जिसे वे उखाड़ फेंकना चाहते थे, उसका अध्ययन और उसकी आलोचना तथा इस आलोचना से प्राप्त न्यायोचित और मानवीय समाज का एक स्वप्न दिया जिसे पूँजीवाद अपने संरचनात्मक तर्क के कारण साकार नहीं कर सकता। मार्क्स की यही विरासत है जो आज किसी व्यावहारिक सिद्धान्त के निर्माण के लिए केन्द्रीय महत्व की चीज है।

मार्क्स ने हमारे वक्तों के लिए अच्छे समाज का एक दृश्यस्वप्न (विजन) दिया था, कोई धर्म मत नहीं। मार्क्स ने 'मुक्त चेतन क्रियाशीलता' को 'मनुष्य के जैविक अस्तित्व' के रूप में पहचाना था। मानवीय प्रकृति में निहित सम्भावनाओं के व्यापक दायरे की उसे विरल चेतना थी जिसकी हम आज कल्पना भी नहीं कर पाते, क्योंकि पूँजीवाद ने हमारी सारभूत मनुष्यता को मलिन कर दिया है और हमारी दृष्टि को धुँधला कर दिया है। उसने पूँजीवाद के परे भविष्य के एक ऐसे समाज को देखा जिसमें ''सबके मुक्त विकास की शर्त होगी, प्रत्येक का मुक्त विकास,'' जहाँ हर व्यक्ति समानता और स्वतन्त्रता से भरपूर सही मायने में मानवीय जीवन व्यतीत करेगा। लेकिन मार्क्स की दृष्टि न तो ऊँचे आदर्शों का सारांश थी, न ही 'क्या है' इसकी परवाह किये बिना 'क्या होना चाहिए' की श्रृंखला जो व्यक्तियों से अमूर्त मूल्यों को अपनाने और अच्छा समाज बनाने की माँग करती है। मार्क्स ने आदर्शवादी यूटोपियावाद, भविष्य के आदर्श समाज के नक्शे बनाने की खारिज कर दिया। उसने 'भविष्य के संगीत की रचना करने' से इनकार कर दिया। दूसरे दृश्यस्वप्नों से अलग मार्क्स का 'विजन' वस्तुगत यथार्थ के धरातल पर, तब अस्तित्व में आ रही उन

परिस्थितियों पर टिका हुआ था जो मानवता के लिए अतीत की अपरिहार्य शोषण पर आधारित, अभावग्रस्त, वर्गीय सभ्यताओं के परे जाना पहली बार सम्भव बना रही थीं। इसी को मार्क्स 'इतिहास-पूर्व' समय से आगे बढ़कर मनुष्योचित इतिहास में प्रवेश करना कहता था। मार्क्स के अनुसार ये परिस्थितियाँ पूँजीवाद द्वारा उत्पन्न की गयी थीं। पूँजीवाद की असाधारण उत्पादक उपलब्धियों की प्रशंसा करते हुए उसने कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो में लिखा, ''क्या पिछली शताब्दी को आभास भी था कि सामाजिक श्रम की गोद में ऐसी उत्पादक शक्तियाँ सो रही हैं?'' मार्क्स ने 'उत्पादक शक्तियों' के ऐसे विकास को भविष्य के समाजवादी/साम्यवादी समाज के भौतिक आधार के निर्माण के रूप में देखा जो पूँजीवाद का ऐतिहासिक कार्यभार था। लेकिन मार्क्स ने यह भी देखा कि पूँजीवाद मानवता के लिए खुलने वाले सम्भावनाओं के नये क्षेत्र को वास्तविकता में बदलने से न केवल इनकार कर रहा है, बल्कि इसे असम्भव भी बना रहा है। दूसरे शब्दों में पूँजीवाद से परे एक अच्छे समाज का मार्क्स का विजन उसके द्वारा की गयी पूँजीवाद की आलोचना से पैदा होता है।

इस आलोचना के दौरान पूँजीवाद की उत्पादक उपलब्धियों के साथ वर्ग शोषण पर आधारित व्यवस्था के रूप में मार्क्स ने इसके नकारात्मक भौतिक परिणामों को भी दर्ज किया। मार्क्स ने उस नैतिक और सांस्कृतिक विध्वंस की तरफ ध्यान दिलाया, पूँजीवाद जिसे मानव जाति के लिए अपने साथ लाता है। उसने लिखा कि मनुष्य पहली बार जब शोषित वर्ग का सदस्य बनता है तो वह अपने 'मानवीय सारतत्व' से वंचित हो जाता है और पूँजीवाद के अधीन अन्तत: वह अपने अन्दर 'समूची मानवता का विध्वंस' होते देखता है। पूँजीवादी शोषण की प्रक्रिया 'लालच और लालचियों के बीच लड़ी जाने वाली प्रतियोगिता नामक लड़ाई' जैसे सहयोगियों के साथ पूँजीपतियों और मजदूरों समेत समूची मानव जाति को अपने मजबूत शिकंजे में जकड़कर 'बाजार की अन्धी ताकतों' के रहमोकरम पर छोड़ देती है। मनुष्य की मुक्त सृजनात्मक आत्मक्रियाशीलता को यह अलगाव के शिकार श्रम में और स्वयं मनुष्य को 'माल' में तब्दील कर देती है। यह मनुष्य को मनुष्य से अलग कर देती है। पूँजीवाद 'मनुष्यों के बीच सभी जेनुइन रिश्तों' को तोड़ देता है और 'मनुष्यों के संसार को एक-दूसरे के प्रति शत्रुतापूर्ण आणविकीकृत व्यक्तियों के संसार' में विलीन कर देता है। यह 'मनुष्य और मनुष्य के बीच नंगे स्वार्थ, कठोर नकद भुगतान' के अलावा रिश्ते का और कोई आधार नहीं छोड़ता और 'व्यक्तिगत सम्पदा को विनिमय मूल्य' में पतित कर देता है। मानव-जीवन का हर पहलू खरीदने और बेचने की वस्तु बन जाता है और ''प्रेम, निष्ठा, ज्ञान, अंतरात्मा, गुण इत्यादि वही चीजें जो कभी सम्प्रेषित की जाती थीं लेकिन बदली नहीं जाती थीं; दी जाती थीं लेकिन बेची नहीं जाती थीं; प्राप्त की जाती थीं लेकिन खरीदी नहीं जाती थीं'' अब बाजारू होकर वाणिज्य के क्षेत्र

में प्रवेश कर जाती हैं। 'धन की दैवी शक्ति सभी मानवीय और प्राकृतिक गुणों को, बाजार में लाकर हतबुद्धि और पराजित कर देती है...'

मनुष्य को अलगाव में डालने, व्यक्तित्व और मानवता से वंचित करने वाले पूँजीवाद के परिणामों की तरफ इशारा करते हुए मार्क्स ने इस तथ्य पर खासतौर से अपना ध्यान केन्द्रित किया कि मानव-जीवन को सही मायने में समृद्ध बनाने वाली सभी शानदार मानवीय संवेदनाओं के बदले में पूँजीवाद सिर्फ ऐतिहासिक रूप से नश्वर और अमूर्त संवेदना सम्पत्ति-बोध को प्रस्तावित करता है जो मानवीय व्यक्तित्व का विध्वंस कर देती है और मनुष्य को 'लालची समाज की भयानक आंतरिक बीमारी' से ग्रस्त कर देती है। मार्क्स के ही शब्दों में, ''इन सभी शारीरिक और मानसिक संवेदनाओं की जगह इनसे विरक्ति की संवेदना–स्वामित्व की भावना घर कर लेती है। मनुष्य को इस असीम दरिद्रता में धकेला जाता है ताकि वह अपनी आंतरिक संम्पत्ति को बाहरी दुनिया के हाथों सौंप सके।'' मार्क्स के लिए पूँजीवाद का तथाकथित धनी व्यक्ति भी वास्तविक जीवन से वंचित और अपनी अंतरात्मा से अपंग 'उतना ही गरीब-आदमी' था। मार्क्स ने लिखा ''जिसकी सम्पत्ति जितनी बड़ी होती है वह उतना ही छोटा होता है'' और उसने इस बात पर जोर दिया कि ''निजी सम्पत्ति का अतिक्रमण ही सभी मानवीय संवेदनाओं और गुणों की पूर्ण मुक्ति है।'' साम्यवाद को उसने ''मानवीय अस्तित्व की मुक्ति और पुनर्प्राप्ति की प्रक्रिया में ऐतिहासिक विकास के अगले चरण के लिए जरूरी वास्तविक दौर'' की संज्ञा दी जिसमें ''निजी सम्पत्ति और मानवीय आत्म-अलगाव के सकारात्मक अतिक्रमण के माध्यम से मनुष्य के द्वारा और मनुष्य का एक सामाजिक प्राणी के रूप में पिछले विकास की समूची समृद्धि के साथ अपने आत्म की तरफ सचेत वापसी।'' मार्क्स इतना और कहता है कि ''व्यक्ति के बरखिलाफ समाज की अमूर्त स्थापना एक ऐसी चीज है जिससे हर हाल में बचना होगा। व्यक्तिगत जीवन–सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति और उसकी पुष्टि है।''

मार्क्स ने 'आवश्यकता के क्षेत्र' और 'स्वतन्त्रता के क्षेत्र' के बीच अन्तर किया था। उसने इस अपरिहार्य तथ्य को दर्ज किया कि जीवन को बनाए रखने के लिए सभी समाजों में भौतिक उत्पादन जरूरी है। ''जैसे बर्बर लोग जीवन की निरन्तरता और उसके पुनरुत्पादन के लिए प्रकृति से जूझते हुए अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, वैसे ही सभ्य मनुष्यों को भी सभी सामाजिक व्यवस्थाओं और सभी सम्भव उत्पादन-विधियों के तहत करना चाहिए।'' मार्क्स ने भौतिक उत्पादन के क्षेत्र को 'आवश्यकता के क्षेत्र' के रूप में देखा। यहाँ भौतिक उत्पादन के लिए पूँजीवादी और समाजवादी तरीकों के बीच चुनाव का प्रश्न है। पूँजीवादी मापदण्ड का अर्थ है 'छद्म नैतिक सिद्धान्त', जैसा कि कीन्स ने इसे एक बार कहा था, ''जिसने हमें दो सौ वर्षों तक संचालित किया है और जिसके चलते कुछ सबसे बेस्वाद मानवीय विशेषताओं को हमने सर्वोच्च मानवीय

गुणों के स्तर तक उठा दिया है।'' या जैसा कि मार्क्स ने सुझाया, समाजवादी तरीके से उत्पादन जिसमें ''संघबद्ध उत्पादनकर्ता अपनी मानवीय प्रकृति के सबसे अनुकूल और अनुरूप परिस्थितियों में न्यूनतम ऊर्जा खर्च करते हुए प्रकृति से अपने आदान-प्रदान को लगातार विवेकसम्मत बनाये रखते हैं।''

बहरहाल मार्क्स के लिए यह अब भी 'आवश्यकता का क्षेत्र' बना रहता है। 'स्वतन्त्रता का क्षेत्र' इसके बाद पड़ता है जो ''केवल तभी शुरू होता है जब सांसारिक जरूरतों के चलते किए जाने वाले श्रम का अन्त हो जाता है।'' मार्क्स ने इसकी विशेषता इस प्रकार बतायी है, ''स्वतन्त्रता का वास्तविक क्षेत्र, मानवीय ऊर्जा का वह विकास जो स्वयं में साध्य है, केवल तभी विकसित हो सकता है जब यह आवश्यकता के क्षेत्र पर आधारित हो।'' इस प्रकार मार्क्स के मुताबिक समाजवाद या साम्यवाद का एक भौतिक आधार होता है लेकिन भौतिक संतुष्टि नहीं। वास्तविक मानवीय संतुष्टि यानी 'स्वतन्त्रता के क्षेत्र' और उसके 'विकसित होने' का अर्थ मार्क्सवादी दार्शनिक लैडिस्लाव स्टॉल ने यह कहते हुए बखूबी सुझाया है कि 'जीवन और जगत के बहुआयामी, सक्रिय, ठोस व्यवहार के बजाय जिसके माध्यम से व्यक्ति न केवल यह कहता है कि ''मैं देखता हूँ, मैं सुनता हूँ, मैं सूँघता हूँ, मैं स्वाद लेता हूँ, मैं स्पर्श करता हूँ'' बल्कि वह यह भी कहता है कि ''मैं करता हूँ, मैं पढ़ता हूँ, मैं प्रेम करता हूँ, मैं प्रशंसा करता हूँ, मैं एक बेहतर कल के लिए संघर्ष करता हूँ''। भावनाओं की इस समृद्धि को आत्मसात करने का सच्चा मानवीय तरीका वही है जिससे मनुष्य दुनिया पर सचमुच विजय पाता है। दूसरे शब्दों में अपनी समस्त इन्द्रिय-संवेदनाओं के साथ। यह केवल पाँच शारीरिक इन्द्रियों का मामला नहीं, क्योंकि पशुओं के विपरीत मनुष्य के पास शानदार मानवीय संवेदनाओं की एक पूरी श्रृंखला है। केवल देखने, सुनने, सूँघने, स्वाद लेने और स्पर्श करने की नहीं, बल्कि संगीत, कविता, विज्ञान, इतिहास और कलाओं को भी। ऐतिहासिक विकास की उपज इन सभी शानदार मानवीय बोधों की जरूरतों को जब मनुष्य संतुष्ट करना शुरू करता है केवल तभी वह संसार के समस्त सौन्दर्य को अपना सकता है और सही मायने में समृद्ध हो सकता है।'

ऐसा था भविष्य का मार्क्स का विजन और यह कोई आदर्शवादी यूटोपिया नहीं था। यह समाज के गर्भ में मौजूद और परिपक्व हो रही सम्भावनाओं पर मजबूती से आधारित था। हाल के दौर की वैज्ञानिक-तकनीकी क्रान्तियों के कारण ये सम्भावनाएँ अब कई गुना अधिक बढ़ गयी हैं। मार्क्स ने अपने विजन के फलीभूत होने की उम्मीद औद्योगिक रूप से विकसित उन देशों में की थी जहाँ पूँजीवाद ने जरूरी भौतिक आधार तैयार कर दिया था। लेकिन इतिहास ने मार्क्स की इस उम्मीद पर एक चाल चल दी। पहले विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद यूरोपीय देशों में हुई क्रान्तियों में, मार्क्स ने जिसका अनुमान लगाया था, केवल रूसी क्रान्ति सफल हुई। पूँजीवाद द्वारा मुहैया किये गये आर्थिक,

राजनीतिक और सांस्कृतिक उपलब्धियों के आधार पर समाजवाद का निर्माण एक अकेले पिछड़े हुए देश में करना पड़ा और वह भी सर्वाधिक शत्रुतापूर्ण पूँजीवाद के वैश्विक वर्चस्व के बीचोबीच। लेनिन ने इस परिस्थिति को पहचान लिया था और सम्भवत: उसके अन्दर इस सम्पूर्णतया अकल्पित स्थिति का रचनात्मक मार्क्सवादी समाधान पेश करने की क्षमता थी। मार्क्सवादी शब्दावली का इस्तेमाल करें तो इस समाधान में उत्पादक शक्तियों का विकास और नये समाज के आधार के रूप में उत्पादन के समाजवादी सम्बन्धों का निर्माण साथ-साथ करना था। लेनिन ने इसे ऐसे संघर्ष के रूप में देखा जिसमें 'पराजय' एक विशिष्ट सम्भावना थी। उसने लिखा, ''संघर्ष और केवल संघर्ष ही निर्धारित करेगा कि हम कितना आगे बढ़ पाते हैं।'' लेकिन वह संघर्ष, खासतौर पर लेनिन की जल्द ही हो गयी मौत के बाद, समुचित नहीं हो सका। पिछड़ेपन का तर्क, बचे रहने भर की बाध्यताएँ, विज्ञानवाद और अर्थवाद ('उत्पादक शक्तियों का सिद्धान्त'), नेतृत्ववादी व्यक्तियों की चरित्रगत कमजोरियाँ–इन सबने अपनी कीमत ली, और वहाँ जो कुछ बना वह एक बुरी तरह से विकृत समाजवाद था। लगभग सत्तर वर्षों बाद अन्तत: रूस को पराजित करके वैश्विक पूँजीवाद ने वापस निगल लिया। जो कुछ हुआ वह अपरिहार्य नहीं था, लेकिन अब यह हो चुका है और दुनिया किसी भी पिछले समय की अपेक्षा अधिक पूँजीवादी हो चुकी है। लेकिन जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, ठीक इसी कारण मार्क्सवाद भी पहले से अधिक प्रासंगिक हो गया है।

भारत चूँकि इस पूँजीवादी विश्व का ही एक अंग है और हमारे शासकों द्वारा 'भूमंडलीकरण' की राह चुन लने के बाद इससे और अधिक अभिन्न होता जा रहा है, यह प्रासंगिकता भारत के लिए भी उतनी ही अधिक हो जाती है। इसलिए अपनी बात खत्म करने से पहले हमारे अपने हालात की थोड़ी चर्चा गैरजरूरी न होगी।

आजकल इसे बहुत याद नहीं किया जाता कि कुछ ही समय पहले हम एक भूमंडलीकृत देश थे। 1947 से पहले हम विश्व बाजार अर्थव्यवस्था से बखूबी एकताबद्ध एक वैश्विक व्यवस्था के अंग थे। हम भूमंडलीकृत थे, लेकिन हम इसे पसंद नहीं करते थे। तब हमारे भूमंडलीकरण का एक नाम भी था–साम्राज्यवाद। हमने इसके खिलाफ खासतौर से इसलिए लड़ाई लड़ी, क्योंकि अपने संरचनात्मक तर्क के कारण इसका अर्थ था–इंग्लैण्ड में पूँजी संचय और भारत में दरिद्रता। तीसरी दुनिया के अन्य देशों की तरह अपने लोगों के हित में स्वतन्त्र, आत्मनिर्भर विकास की राह चुनने में समर्थ होने के लिए हम इस भूमंडलीकरण से छुटकारा चाहते थे। हमारे लम्बे स्वाधीनता संघर्ष का यह बुनियादी आशय है। यह गौरतलब है कि आज के हमारे शासकों में जो सत्ता में हैं उन्होंने अगर इस संघर्ष का विरोध नहीं किया तो इससे कोई वास्ता भी नहीं रखा, और गाँधी तथा नेहरू के उत्तराधिकारी होने के दावा करने वाले लोग जो आज विपक्ष में हैं बहुत पहले ही इस संघर्ष को भूल चुके हैं।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति यानी विदेशियों से भारतीय हाथों में सत्ता-हस्तान्तरण, जिसमें पुरानी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था और राज्य-नौकरशाही संरचना व्यापक रूप से अक्षुण्ण रही, के बाद हमारे उत्तर-औपनिवेशिक शासकों ने भारतीय लोगों के लिए हाल ही में प्राप्त राजनीतिक स्वतन्त्रता को कहीं अधिक महत्वपूर्ण आर्थिक स्वतन्त्रता से पुष्ट करने के लिए आत्मनिर्भर आर्थिक विकास की एक राष्ट्रीय परियोजना स्थापित की। लेकिन इसने महज सरकार समर्थित विशिष्ट भारतीय पूँजीवाद का निर्माण किया और साठ के दशक के मध्य से भारतीयों के लिए त्रासदियाँ पैदा करते हुए और अनेक संकटों से गुजरते हुए यह अन्तत: 1991 में ध्वस्त हो गयी। ऐसे मामलों में शासकों या नेताओं के व्यक्तिगत सरोकार मायने रखते हैं, लेकिन बहुत मामूली। वस्तुगत भौतिक स्थितियों की जरूरतें अधिक निर्णायक होती हैं। क्रान्तिकारी राजनीति, जो समाज के आर्थिक-संरचनात्मक आधार को बदल देती है, की अनुपस्थिति में इसी आधार का तर्क प्रभावी होता है। यही वजह है कि भारतीय लोगों के प्रति गाँधी के समूचे प्रेम और सरोकार के बावजूद, जो उनके लिए भारत के गरीब किसान थे या जैसा कि उन्होंने कहा था, 'धीरे-धीरे मृत्यु की गोद में जाते हुए अधभूखे लोग।' 1947 में जो भारत पर काबिज हुआ वह गाँधी का किसान नहीं था बल्कि रूपक में कहें तो बिड़ला था। और ''स्थापित व्यवस्था के न बदलने पर चुकायी जाने वाली भयानक कीमत'' के प्रति अपनी सारी जागरूकता के बावजूद नेहरू के समाजवादी किस्म के समाज का अन्त खास भारतीय पूँजीवाद में हुआ। इसी प्रकार भारतीय लोगों के हित में लाये गये आत्मनिर्भर आर्थिक विकास की 'राष्ट्रीय परियोजना' भी अन्तत: ध्वस्त हुई।

'राष्ट्रीय परियोजना' के ध्वस्त हो जाने के बाद भारत के शासक वर्गों ने अपनी बड़ी राजनीतिक पार्टियों के माध्यम से 'भूमण्डलीकरण' को भविष्य के अपने राजनीतिक विकल्प के रूप में चुन लिया है। अतीत में राज्य समर्थित पूँजीवादी विकास से लाभान्वित होने के बाद अब वे अपना हित 'मुक्त बाजार' आधारित वैश्विक पूँजीवाद में देखते हैं। लेकिन तीसरी दुनिया के अन्य देशों की तरह भारत के ऐतिहासिक अनुभव से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय लोग अपनी समस्याओं का समाधान पूँजीवाद में नहीं पा सकेंगे, चाहे वह 'समाजवादी किस्म' के नाम पर नेहरू द्वारा बनाया गया भूमण्डलीकृत पूँजीवाद हो। 'विकास दरों' और नीचे की तरफ रिसावों (ट्रिकल डाउन्स) पर बड़ा शोरगुल मचाया जा हरा है। 'नीचे की तरफ रिसाव' होता है लेकिन दुर्लभ रूप से और जैसा कि गालब्रेथ ने एक बार कहा था, अपने सर्वश्रेष्ठ रूप में यह घोड़ों को जौ खिलाने जैसा है ताकि इसका कुछ हिस्सा गौरेयों के लिए सड़क पर बिखर सके! जहाँ तक विकास दर का सवाल है इसकी असलियत ब्राजील के राष्ट्रपति ने अपने देश के बारे में बोलते हुए एक बार वाशिंगटन में बयान की थी–''अर्थव्यवस्था बेहतर है, लेकिन लोग नहीं।'' इसलिए भारतीय अर्थव्यवस्था

'बेहतर' हो सकती है (अपने विकास दरों इत्यादि के साथ) लेकिन लोगों की हालत बेहतर नहीं हो सकेगी। पूँजीवाद का संरचनात्मक तर्क ही ऐसा है। हावर्ड के अर्थशास्त्री राबर्ट रीख से एक मुहावरा उधार लें तो बाजार का तर्क 'कामयाब लोगों के अलगाववाद' तक भी जाता है। भारत के पूँजीवादी बाजार समाज के 'कामयाब' लोगों ने पहले ही अपने 'असफल' देशवासियों, आम भारतीय लोगों से अलग होने का फैसला कर लिया है। यह महज उनकी आर्थिक नीतियों का मामला नहीं है। उनकी जीवनशैली के विकृत मूल्यों और सम्पत्ति के भोंड़े प्रदर्शन में यह अलगाव पूरी तरह जाहिर होता है। टेलीविजन स्क्रीनों, 'राष्ट्रीय' अखबारों के रंगीन परिशिष्टों में चित्रित 'संस्कृति' तथा सांस्कृतिक राष्ट्रवादियों से लेकर केन्द्रीय मंत्रियों के शर्मनाक प्रतिवादों तक, जो बाजार अर्थव्यवस्था को तो लाना चाहते हैं लेकिन इसके साथ अनिवार्यत: आने वाली बाजार नैतिकता और संस्कृति को नहीं, यह बिल्कुल साफ दिखायी पड़ता है।

शासक वर्ग के भूमण्डलीकरण के विकल्प के मुकाबले भारतीय लोग आज अपने वैकल्पिक रास्तों को परिभाषित करने और उनके लिए संघर्ष करने की चुनौती का सामना कर रहे हैं। बहरहाल, यहाँ मैं इस विषय पर अधिक कुछ नहीं कहूँगा। फिलहाल मैं सिर्फ इतना ही कहूँगा कि हमारे देश में जो कुछ हो रहा है और जो कुछ हुआ है उसे समझने और इस प्रकार अपने विकल्प का निर्माण करने में मार्क्सवाद हमारे लोगों की मदद कर सकता है। निश्चित रूप से इस वक्त वाम और जन आन्दोलनों के नेताओं को वैसे सोचना और करना चाहिए जैसे उनकी जगह होने पर मार्क्स ने सोचा और किया होता।

मैं एक निहायत छोटी-सी अन्तिम बात के साथ अपने वक्तव्य का समापन करूँगा। समाजवाद के भविष्य को लेकर मार्क्स आशावादी था। लेकिन वह नियतिवादी नहीं था। मार्क्स के चिन्तन में विजय की अनिवार्यता अथवा गारण्टी नहीं है। कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो में जब उसने दावा किया कि ''अब तक अस्तित्व में आये हर समाज का इतिहास वर्ग संघर्षों का इतिहास रहा है'' तब इसके साथ ही उसने यह भी कहा कि इस संघर्ष का ''अन्त हर बार या तो समाज के क्रान्तिकारी पुनर्निमाण में हुआ है या फिर संघर्षरत वर्गों के सामूहिक विनाश में।'' उसने पूँजीवाद की उत्पादक उपलब्धियों की प्रशंसा की लेकिन उसके द्वारा मनुष्य और प्रकृति को नियमित रूप से पहुँचाये जा रहे नुकसान तथा इसकी दीर्घकालीन विध्वंसक क्षमता, जो रोजा लक्जमबर्ग के इस प्रश्न 'समाजवाद या बर्बरता?' में व्यक्त हुई थी, की भी पहचान की। अपनी ऐतिहासिक अवधि के परे जाने पर पूँजीवाद मानवजाति के लिए निश्चय ही बर्बरता के भविष्य की सूचना देता है। यह किसी परमाणविक विध्वंस, जिसकी सम्भावना आधी शताब्दी से इसकी राजनीति ने बना रखी है, से हो या पर्यावरण के लगभग सुनिश्चित विनाश से

जिसकी पूर्व सूचना 'संभलने योग्य विकास' (सस्टेनेबुल डेवलपमेन्ट) के दावों के न टिक पाने के बाद पूँजीवाद के संचयकारी (एक्युमुलेटिव) तर्क ने दे दी है। दरअसल कुछ रूपों में बर्बरता ने भारत और पूरी दुनिया में दस्तक देनी शुरू कर दी है, बशर्ते हम इसे सुनना चाहें। एंगेल्स ने एक बार कहा था ''इतिहास की देवी सबसे निष्ठुर है।'' कम से कम अब तक इतिहास मार्क्स, लेनिन और माओ के प्रति निष्ठुर रहा है; गाँधी, नेहरू और अन्य अनेक दूसरों के साथ भी। यह हम सब के साथ निष्ठुर हो सकता है। लेकिन मार्क्सवाद के मुताबिक इंसानी मामलों में जब तक कोई चीज घटित नहीं हो जाती, अपरिहार्य नहीं होती। हम संघर्ष में वापस जा सकते हैं और उस भविष्य से इनकार कर सकते हैं जो हमारे शासक हमारे लिए बना रहे हैं। हम जितनी शिद्दत से जूझेंगे और संघर्ष में वापसी करेंगे, अन्तिम विश्लेषण में वही हमारे भविष्य का निर्णय करेगा। हम अब भी नयी सहस्त्राब्दी को अपनी सहस्त्राब्दी बना सकते हैं।

❑❑❑

प्रथम संस्करण: जनवरी, 2004
पुनर्मुद्रण : सितम्बर, 2018

गार्गी प्रकाशन
1/4649/45बी, गली न0 -4,
न्यू मॉडर्न शाहदरा, दिल्ली-110032
e-mail: gargiprakashan15@gmail.com

मुद्रण:
प्रोग्रेसिव प्रिंटर्स
ए-21, झिलमिल इंडस्ट्रियल एरिया,
जी.टी. रोड शाहदरा, दिल्ली-95

मूल्य : 5 रुपये